

कहानी-अलविदा

“जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।” इसका अर्थ प्रयाः सभी जानते हैं। जन्म देने वाली माता और जिस मिट्टी में जन्म लिए हैं अर्थात् मातृभूमि, स्वर्ग से भी क्षेप्ट होती हैं। यह सच है, क्योंकि बिना माँ के हमारा जन्म नहीं होता और बिना भूमि के हमारा पदार्पण नहीं होता।

मैं अपनी बात कहती हूँ, मेरे जीवन में पिता का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि मैंने जैसे ही होश में आई पिता को ही माता और पिता दोनों रूप में पाई। मेरे पिता मुझे हर रोज हार्मोनियम बजाकर सुलाते थे, रुठती थी, तो हार्मोनियम बजाकर मनाते थे। इस तरह मेरे जीवन में मेरे पिता और हार्मोनियम का महत्वपूर्ण स्थान है। मेरे पिताजी सुबह उठते ही मुझे तैयार करने में लगे रहते थे। सायकल में बिठाकर तालाब ले जाना, नहलाकर लाना, तेल लगाना, कंधी करके ऊपर में एक चोटी रिबन डालकर बाँधना, सामने के बाल को चेहरा के तरफ घुँघरालू घुमाकर लाना, चेहरा में पाउडर लगाना, दोनों आँखों में काजल लगाकर, माचिस के तिल से आँख के दोनों किनारे भौंह तक लंबी लाइन खींचना, गाल में टिका लगाना, होंठ के ऊपर काला तिल बनाना, कपड़ा पहनाना, बार-बार मेरे चेहरा को देखना। सायकल में बिठाकर घुमाने ले जाना, पढ़ाना, हाथ पकड़ कर लिखने सिखाना आदि मुझे बहुत पहले की बात नहीं अभी कुछ ही वर्षों की लगती है। दादाजी कहीं पर भी कंधे के ऊपर बिठा कर ले जाते, दादी गोद में उठाकर ही ले जाती थी। खुशियाँ ही खुशियाँ, प्यार ही प्यार। सबके आँखों की तारा। परिवार भर में सबकी चहेती, गाँव के लोगों की प्यारी। ही नहीं थी, उनके मित्र, उनकी विद्यार्थी एवं उनकी उम्मीद थी। मेरे लिए मेरे पिता ही सबकुछ थे। मेरे पिता नौकरी के अतिरिक्त रामलीला मैनेजर भी थे, उस क्षेत्र में लीला मैनेजर के नाम से प्रसिद्ध थे। जहाँ-जहाँ वे रामलीला कराते, उनके साथ मंच पर मैं ही बैठती थी। कभी हार्मोनियम के पास उठकर स्टेज के अंदर जाते तो मैं बजाना शुरू कर देती थी, वे



दौड़कर आ जाते थे, इस तरह मैं भी अपने पिता के कारण प्रसिद्ध हो गयी थी। समय के साथ-साथ मैं भी बड़ी होती गई और पढ़ाई लिखाई में लग गई, लेकिन उनके संगीत से हमेशा जुड़ी रही। हर चीज में वे मुझे आगे देखना चाहते थे, और जहाँ तक हो सके मैं भी खरा उतरने की कोशिश करती रही। धीरे-धीरे मेरे सभी चाहने वाले एक-एक करके इस दुनिया से विदा होते गए और मेरे जीवन में मेरे पिता ही एक धुरी बनकर रह गए, जो मेरे जीवन के आरंभ थे। सब कुछ ठीक चल रहा था, कि एक दिन बाप (पिताजी) भी बीमार के आगोश में आ गए। मैं आखरी बार उनसे मिलने गयी तो देखी कि अब वे समझने-बूझने की स्थिति में नहीं है। मेरे आने की खबर सुनकर दो-तीन पहले से ही बाहरी दरवाजा के पास कुर्सी लगाकर दिन-भर बैठकर मेरा इंतजार करते



रहे, लेकिन मैं पहुँची और मिली उसके बाद से उनकी स्थिति और अधिक बिगड़ गई। शायद मुझसे मिलना ही उनकी अंतिम इच्छा रही हो? कुछ दिन रुकने के बाद जब मैं वापस आने लगी तो मात्र दस मिनट की अंतिम घड़ी में आखरी बार मिलभेंट की। यह आखरी मुलाकाल बड़ा ही खौफनाक था। मानो हवा रुक गई हो, सब कुछ बदला-बदला, उल्टा हो रहा था। सन्नाटा छाया हुआ था, कोई चहल-पहल नहीं, सिर्फ मुर्गी के कोट-कोटिंग की आवाज सन्नाता को भंग कर रही थी। मैं बचपन से रामलीला देखती थी, उस समय मुझे राम-वनवास की कथा की सीन दिखाई देने लगी थी। जिसमें राम को चौदह साल का वनवास दिया गया था, कैकेयी हावी हो गयी थी, राजा दशरथ मजबूर होकर आँसू बहाने लगे थे, वे चाहकर भी कुछ नहीं कर सके। राम के वनवास जाते ही पुत्रमोह में दशरथ, हाथ राम, कहते हुए तड़प-तड़प प्राण त्यागे। ये सारे दृश्य मुझे दिखाई देने लगे। मुझे उस समय वह दोहा भी याद आया, जिसे मेरे पिताजी हार्मोनियम बजाते हुए उस समय गाते थे। “कैकेयी के वचन सुन, दशरथ हुए निढाला। रामा दशरथ हुए निढाल। तुमने मेरे राम को, घर से दिए निकाला। पता नहीं इस दस मिनट के अल्प समय में कई प्रकार के चित्र उभरते गये और पिताजी फफक-फफककर रो पड़े। उनके दाहिना आँख से आँसुओं के धार बहने लगे थे। मैं सिर्फ आँखों को ही देख रही थी और मूर्तिवत खड़ी थी। इस से पहले उनके आँखों से बहते हुए इतनी आँसू मैं कभी नहीं दुखी थी। कमसेकम आँखों से आँसुओं को भी तो अंतिम बार पोछ दी होती, लेकिन नहीं पोंछी सिर्फ देखती रह गई। जिसने कभी भी मेरे आँखों में आँसू आने नहीं दिया, कभी हार मानने नहीं दिया, मेरी गलतियों को भी सच बना देते थे। उस समय मुझे मेरे पिता दशरथ लगने लगे थे और मैं राम। ऐसा क्यों? क्या क्या के कारण या कुछ और कारण था। यही अंतिम विदाइ का समय था और मैं अपने पिता को रोते हुए छोड़कर घर वापस आने के लिए पीछे

मुड़ी, क्योंकि स्टेशन पहुँचना था और काफी नजदीकी समय था। अगर थोड़ी देर भी और रुकती तो गाड़ी निकल जाती और एक गाड़ी निकल जाती तो सारी गा. डियाँ ही निकलती जाती और मैं वापस नहीं आ पाती बस यही चिंता मेरे मन के अंदर उथल-पुथल मचाने लगी थी कैसी विडम्बना है, मेरे पिता ने अपना पूरा समय मेरे देखभाल पालन-पोषण और जीवन बनाने के लिए लगा दिए। यहाँ तक कि सेलून में दाढ़ी बनव. ने, बाल कटवाने जाते थे, तब भी मुझे साथ लेकर ही जाते थे, और मैं गाड़ी छुटने के भय से रोते हुए छोड़कर आ गई। जाते थे हत् रे मेरे हत्भाग्य। जैसे मैं वापस आने के लिए पीछे मुड़ी मेरे पैर बोझिल होते गए। कुछ पाँच सात कदम चलने के बाद मेरा मन नहीं माना, मैं पलटकर देखने की कोशिश की। मुझे ऐसे लगने लगा था, जैसे मेरे पिताजी कह रहें हो, कि एक बार आ जा बेटी मेरे सीने से लग जा। हाथ फैलाकर बुला रहे हों और मैं भी दौड़कर उनके सीने से लिपटकर खूब रोऊँ। लेकिन तभी मेरे सामने बही राम वनवास का दृश्य उभरी और सुनाई देने लगा, कि राम तुमको वनवास जाना ही होगा, तुम जितने समय तक पिता के पास रहोगे, तुम्हारे पिता की तकलीफें और भी बढ़ती जाएगी। मैं पीछे मुड़कर देख भी नहीं पाई और भारी कदमों के साथ आकर गाड़ी में बैठ गयी। फिर कब स्टेशन पहुँची पता भी नहीं चला। यही मेरे अपने पिता के साथ अंतिम भेंट और मुलाकात थी या कहो अंतिम विदाई। उस समय मैं उन्हें रोते हुए छोड़कर आई थी, अब तो वे हमेशा के लिए संसार को अलविदा कहकर चले गए, मगर स्वप्नों में मुझे रोते हुए छोड़कर गाड़ी में बैठकर चल जाते हैं। मैं विदाई के उस पल को जिंदगीभर नहीं भुलूँगा।

सरस्वती जैन
हिन्दी विभाग

गीत कविता-सरमान

सरस्वती जैन
हिन्दी विभाग

भगवान तुम्हें मैं खत लिखती,
पर पता मुझे मालूम नहीं।
दुख भी लिखती, सुख भी लिखती,
पर पता मुझे मालूम नहीं।।
सूरज से पूछ, चाँद से पूछ,
पूछ टिम-टिम तारों से।
पर पता हमें मालूम नहीं।।
नदियों से पूछ, लहरों से पूछ,
पूछ बहते झरनों से।
झरनों ने कहा सागर में है,
पर पता मुझे मालूम नहीं।
फूलों से पूछ, कलियों से पूछ,
पूछ बाग के माली से।
इन सबने कहा हर डाल पे है,
पर पता मुझे मालूम नहीं।।
साधुओं से पूछ संतों से पूछ,
पूछ दुनिया के लोगों से।
इन सबने कहा हृदय में है,
पर तुमने कभी ढूँढ ही नहीं।।
भगवान तुम्हें मैं खत लिखती,
पर पता.....।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य

प्रातः शर्य उदय होते ही जिंदगी का एक नया दिन शुरू होता है और शूर्यास्त होने तक दिन समाप्त हो जाता है। इस तरह रोज एक दिन उम्र से घट जाता है। जन्म लेने के बाद से ही आयु-क्षय का यह कार्यक्रम शुरू हो जाता है, किंतु अनेक प्रकार के कार्यक्रम से बंधे हुए विभिन्न क्रिया-कलापों में लगे रहने के कारण उस बीते समय का पता नहीं चलता। ऐसे अवसर प्रायः प्रतिदिन आते हैं, कितना मदांध, कामन्रास्त और अविवेकी है मनुष्य कि वह सब कुछ आँखों से देखते हुए भी विवेक और विचार की दृष्टि से अंधा ही बना हुआ है।

उस मनुष्य को क्या कहें, जो आत्म-स्वरूप को भूलकर अपने वासना 'शरीर' को ही सजाने में आनंदित हो रहा है। मनुष्य यह जानते हुए भी कि



यह शरीर नाशवान है और अन्य जीवधारियों के समान इसे भी किसी न किसी दिन धूल में मिल जाना है, फिर भी वह शारीरिक सुखों के मृगतृष्णा में इस तरह पागल हो रहा कि उसको अपने सही स्वरूप तक का ज्ञान नहीं है। शारीरिक सुखों के संपादन में ही

वह जीवन का अधिकांश माग नष्ट कर देता है। जब तक शक्ति और यौवन रहता है, तब तक उसकी यह समझदारी की आँखें खुलती तक नहीं, बाद में जब संस्कार की जड़े गहरी जम जाती हैं और शरीर में शिथिलता आ जाती है, तब फिर समझ आने से भी क्या बनता है? चतुरता को तब है, जब अवसर रहते मनुष्य सद्गुणों का संचय करके इस योग्य बन जाए कि यह जीवन यात्रा संतोषपूर्वक पूरी करके लौटने में कोई बाधा शेष रहे।

इस जीवन में काय, क्रोध लोभ तथा मोह आदि के मलविक्षेप आत्म पवित्रता को मलिन करते रहते हैं। इस मलिनता को ब्रह्मचर्य, क्षुद्धा, क्षम और प्रेम के दिव्य गुणों द्वारा दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसमें संदेह नहीं, यह मार्ग कठिनाइयों और जटिलताओं से ग्रस्त है। पर यदि सचाई, श्रद्धा भक्ति एवं आत्म समर्पण के द्वारा ईश्वर के सतोगणी प्रकाश की ओर बढ़ते रहें तो ये कठिनाइयाँ मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं एकती।

जीवनयाजन और जीवन लक्ष्य दो भिन्न बातें हैं। प्रायः सामान्य लोगों का लक्ष्य जीवनयापन ही रहता है। खाना-कमाना ब्याह-शादी, लेन-देन व्यवहार-व्यापार आदि साधना जीवनक्रम को पूरा करते हुए मृत्यु तक पहुँच जाना, बस इसके अतिरिक्त उनका अन्य कोई लक्ष्य नहीं होता। एक जीविका का साधन जुटा लेना एक परिवार बसा लेना और बच्चों का पालन-पोषण करते हुए शादी ब्याह आदि कर देना मात्र ही साधारण तथा लोगों ने जीवन का लक्ष्य मान लिया है।

बस्तुतः यह जीवनयापन की साधारण प्रक्रिया मात्र जीवन लक्ष्य नहीं, जीवन लक्ष्य उस सुनिश्चित विचार को ही कहा जाएगा, जो संसार के साधारण कार्यों से कुछ अलग, कुछ ऊँचा हो और जिसे पूरा करने में कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पड़े।

जीवनयापन की साधारण प्रक्रिया को भी यदि एक असामान्य दृष्टिकोण से लेकर चला जाए तो वह भी एक प्रकार का जीवन लक्ष्य बन जाता है। इस साधारण प्रक्रिया का असाधारणत्व केवल वही हो सकता है कि जीवन इस प्रकार से बिताया जाए, जिसमें मनुष्य पतन के गर्त में न गिरकर एक आदर्श जीवन बिताता हुआ उसकी परि समाप्ति तक पहुँच जाए। जिसने जीवन को आहों, आँसुओं तथा विषादों से मुक्त करके हास, उल्लास हर्ष प्रमोद तथा उत्साह के साथ

बिता लिया है, उसने भी मानो सफल जीवनयापन का एक लक्ष्य ही प्राप्त कर लिया है। जिसने संतोषपूर्वक हँसते हुए जीवन-परिधि के बाहर पैर रखा है, उसका जीवन सफल ही माना जाएगा। इसके विपरीत जिसने जीवन-परिधि को रोते, तड़पते तथा तरसते हुए पार किया, मानो उसका जीवन घोर असफल ही हुआ।

जीवन की सफलता का प्रमाण जहाँ किसी के कार्य और कर्तृत्व से दिया करते हैं वहाँ किसी के कार्य और कर्तृत्व से दिया करते हैं, वहाँ उसकी अंतिम श्वास में सन्निहित शांति एवं संतोष की मात्रा भी उसका एक सुंदर प्रमाण है।

जीवनयापन को जीवन लक्ष्य मानने वाले भी जब तक अपने जीवन में एक व्यवस्था, एक अनुशासन और एक सुंदरता नहीं लाएँगे, तब तक जीवन जीने की स्वाभाविक प्रक्रिया में भी सफल न हो सकेंगे। जिस जीवन में हास, उल्लास तथा उत्साह की मात्रा जितनी अधिक होगी, वह उतना ही सुंदर होगा। प्रसन्नता ही जीवन की सुंदरता का दूसरा नाम है। जिस जीवन में हास नहीं, उत्साह एवं उल्लास नहीं, उसमें क्यों न संसार भर के सुख-साधन हों, क्यों न वह विपुल सोने से निर्मित किया गया हो, सुंदर नहीं कहा जा सकता।

ऊँचा कोठी, सजे कमरे, सुंदर-वस्त्र, परिपूर्ण तिजोरियाँ और रंगरूप से भरी रंगरोलियाँ भले ही किसी के जीवन को दूसरों के लिए आकर्षक बना दें, किंतु यह उपादान उसके स्वयं के लिए जीवन की सुंदरता का सृजन नहीं कर सकते।

जीवन की सुंदरता बाहरी वैभव में नहीं, मनुष्य के आंतरिक संसार में हुआ करती है। जिसके गण, कर्म, स्वभाव जितने ही सात्विक और सुरुचिपूर्ण होंगे, उसका जीवन उतना ही प्रसन्न, उतना ही सुंदर होगा। जो अविचारी, व्यभिचारी अथवा अवगुणी है, वह कितना ही धनवान, शानशौकत वाला, सुंदर शरीर और रहन-सहन वाला क्यों न हो, सुंदर जीवन की परिधि में नहीं आ सकता। इसके विपरीत हो सामान्य स्थिति का है, गरीब है, बहुत सुंदर शरीर वाला भी नहीं है, यदि वह शिष्ट सम्य, सुशील, संतुष्ट और शांत है तो वह अधिक सुंदर जीवन कहा जाएगा।